

दीनदयाल उपाध्याय के दृष्टिकोण से वितरणात्मक न्याय का पुनरावलोकन: एकात्म मानववाद और इसकी समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. गजेन्द्र

सहायक प्राध्यापक, प्रवासी अध्ययन केंद्र (स्वतंत्र केंद्र) विभाग, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय, गुजरात, भारत

सारांश

एक आदर्श राज्य की कल्पना को साकार करने की पहल राजनीतिक दर्शन में वर्षों से होती चली आ रही है। यूनानी दर्शन में प्लेटो, अरस्तू जैसे दार्शनिकों ने अपनी कृतियों जैसे रिपब्लिक तथा पॉलिटिक्स में एक आदर्श राज्य कैसे स्थापित हो, इस पर अपने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। भारतीय दर्शन में रामराज्य, महाभारत के शांति पर्व में सामाजिक समझौते के आधार पर राज्य का निर्माण, बौद्ध साम्राज्य के प्रजातंत्र आदि के वर्णन देखने को मिलते हैं। इन तमाम दर्शनों के बावजूद पश्चिम को लोकतंत्र के आधार के रूप में देखा जाता है। दीनदयाल उपाध्याय इन विकृतियों को दूर करना चाहते थे जिसके लिए उन्होंने भारतीय दर्शन से ही एकात्म मानववाद नामक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। (1) यह लेख दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के सिद्धांत को वितरणात्मक न्याय के एक संभावित ढांचे के रूप में जांचता है। जिस प्रकार वितरणात्मक न्याय का उद्देश्य आदर्श राज्य का निर्माण करना है ठीक उसी प्रकार एकात्म मानववाद का उद्देश्य भी एक आदर्श राज्य का निर्माण है। वितरणात्मक न्याय के तहत निष्पक्षता, संसाधनों व जिम्मेदारियों का उचित वितरण आदि पर ध्यान दिया जाता है। दीनदयाल उपाध्याय का एकात्ममानव सिद्धांत भी इन सिद्धांतों के पालन पर विचार करता है। तत्कालीन समय में प्रचलित पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों को खारिज करते हुए दीनदयाल उपाध्याय ने आध्यात्मिक और भौतिक संतुलन की भारतीय परंपरा में निहित एक दर्शन विकसित किया। (2) यह लेख तर्क देता है कि उनके विचार जो विकेंद्रीकरण, स्वदेशी और समुदाय कल्याण पर केंद्रित हैं, आधुनिक वितरणात्मक न्याय की बहस के लिए एक प्रासंगिक विकल्प प्रस्तुत करते हैं। (3) यह अध्ययन दीनदयाल उपाध्याय के दृष्टिकोण और पश्चिमी न्याय सिद्धांतों, विशेष रूप से जॉन रॉल्स के न्याय के निष्पक्षता सिद्धांत और मार्क्सवादी पुनर्वितरण के बीच तुलना करते हुए यह बताने का प्रयास करता है कि किस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद का सिद्धांत, जॉन रॉल्स के न्याय के सिद्धांत और कार्ल मार्क्स के आर्थिक वर्ग-संघर्ष से बेहतर विकल्प प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: एकात्म मानववाद, वितरणात्मक न्याय, आदर्श राज्य, समुदाय कल्याण प्रस्तावना

वितरणात्मक न्याय का तात्पर्य समाज में संसाधनों, सेवाओं और अवसरों के न्यायसंगत आवंटन से है। वितरणात्मक न्याय का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि यह आवंटन उचित व न्यायसंगत होना चाहिए।

यह मुद्दा सदियों से राजनीतिक दर्शन का एक प्रमुख विषय रहा है। विभिन्न संस्कृतियों और युगों में विद्वानों ने यह सवाल उठाया है कि समाज में कैसे सुनिश्चित किया जाए कि व्यक्तियों और समुदायों को धन, शक्ति और संसाधनों तथा अवसरों का उनका उचित हिस्सा प्राप्त हो? यह सवाल केवल सैद्धांतिक नहीं है बल्कि व्यावहारिक भी है क्योंकि इसके उत्तर वही नीतियाँ निर्धारित करते हैं जो अर्थव्यवस्थाओं और राजनीतिक संरचनाओं का संचालन करती हैं। पश्चिमी राजनीतिक सोच ने वितरणात्मक न्याय पर चर्चा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जहाँ जॉन रॉल्स और कार्ल मार्क्स जैसे विचारकों ने न्याय और समानता पर अपने-अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। पश्चिमी राजनीतिक चिंतन की शुरुआत प्राचीन ग्रीस और रोम से होती है जो समय के साथ विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं और दार्शनिक दृष्टिकोणों से विकसित होती रही। यह चिंतन राजनीतिक संस्थाओं, सत्ता, न्याय और स्वतंत्रता के सवालों पर आधारित है। पश्चिमी राजनीतिक विचारकों ने विभिन्न युगों में इन मुद्दों पर महत्वपूर्ण बहसों की जिनका प्रभाव आज भी राजनीति और समाज पर दिखाई देता है। हालाँकि भारत जैसे देश के संदर्भ में इन पश्चिमी सिद्धांतों की सीमाएँ अक्सर सामने आई हैं क्योंकि वे भारतीय समाज की अद्वितीय सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को संबोधित नहीं करते।

भारतीय राजनीतिक चिंतन में भी वितरणात्मक न्याय पर विचार-विमर्श होता रहा है। समय समय पर एक आदर्श समाज की

कल्पना साकार कैसे हो, मूलभूत संसाधनों, सेवाओं आदि का बटवारा कैसे हो, इस बटवारे का आधार क्या होगा ऐसे सवालों का जवाब ढूँढने की कोशिश समय समय पर भारतीय चिंतन में होती रही है। इस सन्दर्भ में महात्मा बुद्ध, संत कबीर, संत रविदास, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई, राजा राममोहन राय, वीर सावरकर, महात्मा गांधी, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, डॉ भीमराव अम्बेडकर, काशीराम आदि अनेक भारतीय विद्वानों ने समाज को न्याय संगत बनाने को लेकर प्रयास किये हैं। इस चिंतनधारा में भारतीय राजनीतिज्ञ दीनदयाल उपाध्याय का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने एक आदर्श समाज की कल्पना अपने चिन्तन में प्रस्तुत की है। इस चिंतन के तहत उन्होंने एकात्म मानव दर्शन नामक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। दीनदयाल उपाध्याय 20वीं सदी के भारत के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक विचारकों में से एक हैं जिन्होंने पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों प्रमुख पश्चिमी विचारधाराओं को भारतीय संदर्भ के लिए अपर्याप्त बताया (कुमार और गजेन्द्र, 2021)¹⁷। इसके बजाय उन्होंने एकात्म मानववाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया जो व्यक्ति और समाज दोनों के समग्र विकास पर जोर देता है (उपाध्याय, 1965)³। उपाध्याय का दर्शन भारतीय परंपरा में निहित है जहाँ आध्यात्मिक और भौतिक संतुलन पर महत्व दिया गया है। यह दृष्टिकोण पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों से भिन्न है जो मुख्य रूप से भौतिक आवश्यकताओं पर केंद्रित होते हैं। उपाध्याय के विकेंद्रीकरण (Decentralization), स्वदेशी (Swadeshi) और सामुदायिक कल्याण के विचार वितरणात्मक न्याय के उनके दृष्टिकोण की नींव बनाते हैं। आज के वैश्वीकृत विश्व में जहाँ असमानता लगातार बढ़ रही है, समाज में असंयम तथा असंतुलन भी बढ़ रहा है ऐसे में उपाध्याय के एकात्म मानववाद का सिद्धांत

वितरणात्मक न्याय प्राप्त करने का एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसा मॉडल है जो आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, और भौतिक आयामों का एकीकरण करता है। उपाध्याय के एकात्म मानववाद को एक संभावित वितरणात्मक न्याय के ढाँचे के रूप में जांचने का प्रयास इस लेख में किया गया है और इसे व्यापक राजनीतिक सिद्धांत के संदर्भ में रखते हुए समकालीन बहसों में इसकी प्रासंगिकता का आकलन करने का प्रयास जिसमें सामाजिक व आर्थिक असमानता, वैश्वीकरण, और सतत विकास जैसे मुद्दे शामिल हैं।

पश्चिमी राजनीतिक चिंतन की पृष्ठभूमि

पश्चिमी राजनीतिक चिंतन का प्रारंभ प्राचीन ग्रीस में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे दार्शनिकों से होता है। प्लेटो की कृति "दि रिपब्लिक" में आदर्श राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की गई जहां न्याय और नैतिकता के आधार पर शासकों का चयन किया जाता है। प्लेटो का आदर्शवादी दृष्टिकोण इस बात पर केंद्रित था कि शासक वह हो जो दार्शनिक हो क्योंकि केवल दार्शनिक ही सत्य और न्याय को समझ सकते हैं। प्लेटो ने आदर्श समाज तथा शासन व्यवस्था कि नींव रखने का कार्य किया। उन्होंने सभी स्वतंत्र जनो को राज्य द्वारा शिक्षा की व्यवस्था का प्रावधान हो इसका समर्थन किया। राज्य में एक वर्ग दुसरे वर्ग के कार्यों में बाधा न डाले इसका भी प्रावधान प्लेटो ने अपनी रिपब्लिक कृति में किया। इसके विपरीत अरस्तू का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक और अनुभवजन्य था। अरस्तू ने अपनी कृति "पॉलिटिक्स" में विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों का विश्लेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सबसे अच्छा शासन वह है जो लोकतंत्र और कुलीनतंत्र का मिश्रण हो। अरस्तू का तर्क था कि मनुष्य स्वभाव से ही राजनीतिक प्राणी है और इसलिए राजनीतिक समुदाय में रहने के लिए स्वाभाविक रूप से प्रेरित होता है।

मध्यकालीन राजनीतिक चिंतन में ईसाई धर्म का गहरा प्रभाव देखा जाता है। सेंट ऑगस्टीन ने अपनी कृति "सिटी ऑफ गॉड" में राज्य और चर्च के संबंधों पर विचार किया। उन्होंने मानव शासन को ईश्वर के शासन के अधीन माना और तर्क दिया कि मानव राज्य अस्थायी और दोषपूर्ण होते हैं। ऑगस्टीन का तर्क था कि सच्चा न्याय केवल ईश्वरीय शासन में ही प्राप्त हो सकता है। थॉमस एक्विनास ने प्लेटो और अरस्तू की धारणाओं को ईसाई धर्म के साथ जोड़ते हुए प्राकृतिक कानून का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उनकी कृति "सुम्मा थियोलॉजिया" में उन्होंने तर्क दिया कि सरकार का उद्देश्य नैतिक रूप से अच्छा जीवन सुनिश्चित करना है। उनका मानना था कि प्राकृतिक कानून से ही मनुष्य के अधिकार और कर्तव्यों का निर्धारण होता है। पुनर्जागरण के दौर में राजनीतिक चिंतन में धर्म का प्रभाव घटने लगा और यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ। पश्चिमी दार्शनिक मैकियावेली की प्रसिद्ध कृति "दि प्रिंस" ने राजनीति में नैतिकता के स्थान पर सत्ता की व्यावहारिकता पर जोर दिया। उन्होंने राजा को यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाने का सन्देश दिया। मैकियावेली का तर्क है कि शासकों को राज्य की सुरक्षा और स्थायित्व के लिए नैतिक सिद्धांतों को नजरअंदाज करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। इसने यथार्थवादी राजनीति की नींव रखी जिसे आज भी रियलपॉलिटिक के रूप में जाना जाता है। थॉमस हॉब्स ने अपनी कृति "लेवियाथन" में मानव स्वभाव के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण अपनाया और तर्क दिया कि प्राकृतिक अवस्था में जीवन निराशाजनक, क्रूर और छोटा होता है। हॉब्स ने राज्य के सामाजिक अनुबंध की अवधारणा पेश की जिसमें नागरिक अपनी सुरक्षा के लिए कुछ अधिकार राज्य को सौंपते हैं। इसके विपरीत जॉन लॉक ने सामाजिक अनुबंध को स्वतंत्रता और प्राकृतिक अधिकारों के रक्षक के रूप में देखा। उनकी कृति "टू ट्रीटिसेज ऑफ गवर्नमेंट" में उन्होंने तर्क दिया कि मनुष्य

स्वतंत्रता, जीवन और संपत्ति के प्राकृतिक अधिकारों के साथ पैदा होते हैं जिन्हें सरकार को संरक्षित करना चाहिए (मुखर्जी और रामास्वामी 2011)¹⁹।

19वीं और 20वीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने पूंजीवाद की तीखी आलोचना की और वैज्ञानिक समाजवादी सिद्धांतों को प्रस्तुत किया। मार्क्स का तर्क था कि इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है और अंततः सर्वहारा (मजदूर वर्ग) को शोषण से मुक्त होने के लिए पूंजीवादी प्रणाली को समाप्त करना होगा। उनकी विचारधारा ने पूरे विश्व में समाजवादी आंदोलनों को प्रेरित किया। यह विचार वर्ग संघर्ष तथा हिंसा पर आधारित था इसलिए बहुत से राजनीतिक चिंतकों ने इसकी आलोचना की। जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपनी कृति "ऑन लिबर्टी" में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की महत्ता पर जोर दिया और तर्क दिया कि राज्य को व्यक्ति के जीवन में तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब किसी के कार्य से दूसरों को नुकसान हो। फ्रेडरिक नीत्शे ने पश्चिमी नैतिक मूल्यों की आलोचना की और "विल टू पावर" का सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने पारंपरिक नैतिकता और लोकतांत्रिक मूल्यों पर सवाल उठाये।

समकालीन राजनीतिक चिंतन में जॉन रॉल्स और रॉबर्ट नोजिक जैसे विचारकों ने न्याय और स्वतंत्रता पर गहन चर्चा की। रॉल्स की "अ थ्योरी ऑफ जस्टिस" में न्याय का सिद्धांत "अवसर की समानता" और "अज्ञान के पर्दे" के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है (रोल्स, 1971)¹³। मिशेल फूको और जूडिथ बटलर ने सत्ता, पहचान और सामाजिक संरचनाओं की आलोचना की जो आज के राजनीतिक विमर्श में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

वितरणात्मक लो लेकर राजनीतिक सिद्धांत में कई बहसे देखने को मिलती है जिनमें मुख्य रूप से लिबर्टेरियन, समतावादी, क्षमता वादी आदि मुख्य हैं। लिबर्टेरियनवाद का यह विचार है कि हर व्यक्ति अपने शरीर, दिमाग, और श्रम का स्वामी है और उसे अपने जीवन को अपने तरीकों से जीने की पूरी स्वतंत्रता तब तक होनी चाहिए जब तक वह दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन न करे (मुखर्जी और रामस्वामी, 2011)¹⁹। इस सिद्धांत को स्व-अधिकारिता (Self-Ownership) कहा जाता है। लिबर्टेरियन मानते हैं कि समाज में न्याय का अर्थ यह नहीं है कि सबको समान परिणाम मिले या संपत्ति का पुनर्वितरण हो बल्कि इसका अर्थ यह है कि व्यक्तियों के अधिकारों का सम्मान किया जाए और वे अपनी मेहनत से जो कुछ भी प्राप्त करते हैं उसका संरक्षण हो। लिबर्टेरियनवाद न्यूनतम राज्य का समर्थन करता है जिसका अर्थ यह है कि राज्य का हस्तक्षेप केवल उन मामलों तक सीमित होना चाहिए जहां यह अनुबंध लागू करने, संपत्ति अधिकारों की रक्षा करने, और सुरक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक हो।

रोबर्ट नोजिक(1774) का मानना है कि राज्य का मुख्य कार्य केवल इस बात को सुनिश्चित करना है कि लोग अपने संपत्ति अधिकारों का सम्मान करें और उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाए। इसके विपरीत राज्य को लोगों की संपत्ति का पुनर्वितरण करने का अधिकार नहीं होना चाहिए क्योंकि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन माना जाता है। रॉबर्ट नोजिक अपनी पुस्तक अनार्की, स्टेट एंड यूटोपिया (1974) में वितरणात्मक न्याय के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। नोजिक ने अधिकार सिद्धांत (Entitlement Theory) के तहत तीन महत्वपूर्ण सिद्धांतों को बताया है जो न्यायसंगत वितरण का आधार हैं। इन सिद्धांतों में अधिग्रहण में न्याय (Justice in Acquisition), हस्तांतरण में न्याय (Justice in Transfer) और अन्याय का सुधार (Rectification of Injustice) शामिल है। अधिग्रहण में न्याय का सिद्धांत बताता है कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को तब तक वैध रूप से प्राप्त कर सकता है जब तक वह इसे नैतिक रूप से और अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लंघन किए बिना हासिल करता है (भार्गव 2008)⁴। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति

किसी वस्तु का उत्पादन करता है या किसी प्राकृतिक संसाधन का वैध रूप से उपयोग करता है तो वह उसकी संपत्ति मानी जाएगी। दूसरी तरफ हस्तांतरण में न्याय (Justice in Transfer) का सिद्धांत बताता है कि संपत्ति का हस्तांतरण या लेन-देन तभी न्यायसंगत होता है जब यह स्वैच्छिक हो और दोनों पक्षों के बीच सहमति से हो। अगर कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को किसी दूसरे व्यक्ति को बेचता है या उपहार में देता है तो यह लेन-देन तब तक न्यायसंगत होगा जब तक यह किसी भी प्रकार की धोखाधड़ी या बल प्रयोग के बिना हो। नौजिक के तीसरे सिद्धान्त अन्याय का सुधार (Rectification of Injustice) के तहत यदि संपत्ति का अधिग्रहण या हस्तांतरण किसी अन्यायपूर्ण तरीके से हुआ है (जैसे चोरी, धोखाधड़ी या बल प्रयोग से) तो इसे सही करने के लिए उचित सुधारात्मक उपाय किए जाने चाहिए। इसका मतलब यह है कि अगर कोई व्यक्ति अवैध रूप से संपत्ति प्राप्त करता है तो उसे उस संपत्ति को वापस करना होगा या उचित मुआवजा देना होगा।

दूसरी तरफ समानतावादी विचारक इस बात पर जोर देते हैं कि संसाधनों, अवसरों और लाभों का समाज में समान रूप से वितरण होना चाहिए ताकि असमानताओं को कम किया जा सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हो सके। समानतावाद का प्रमुख उद्देश्य समाज में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक असमानताओं को कम करना है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर और संसाधनों की प्राप्ति हो सके। वितरणात्मक न्याय इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि इसका उद्देश्य समाज के सभी सदस्यों के बीच संसाधनों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करना है। पश्चिमी परंपरा में वितरणात्मक न्याय मुख्य रूप से इस बात से जुड़ा हुआ है कि संसाधनों और अवसरों का न्यायसंगत वितरण कैसे किया जाए। इस संदर्भ में जॉन रॉल्स और कार्ल मार्क्स दो सबसे प्रभावशाली विचारक माने जाते हैं। जॉन रॉल्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, "अ थ्योरी ऑफ जस्टिस (1971) में न्याय को निष्पक्षता (Justice As Fairness) के रूप में परिभाषित किया। रॉल्स ने मूल स्थिति (Original Position) और अज्ञान का आवरण (Veil of Ignorance) की अवधारणा पेश की, जो एक विचार प्रयोग है जिसमें व्यक्ति अपने सामाजिक पदों के बारे में अज्ञानी होते हैं और वे ऐसे न्याय सिद्धांतों का चुनाव करते हैं जो सभी के लिए न्यायसंगत हों।

रॉल्स के अनुसार इस स्थिति में चुने गए सिद्धांतों का परिणाम एक ऐसी व्यवस्था होगी जहाँ असमानताओं की अनुमति केवल तभी दी जाएगी जब वे समाज के सबसे वंचित सदस्यों के हित में हों। रॉल्स का सिद्धांत उदारवादी समानतावाद पर आधारित है जो इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि संस्थागत संरचनाएँ ऐसी हों जो संसाधनों और अवसरों के वितरण में न्याय को सुनिश्चित करें। रॉल्स अपने न्याय के सिद्धान्त को विस्तृत रूप से समझाने के लिए न्याय के दो सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इन सिद्धांतों में समान मौलिक स्वतंत्रताएँ जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सबसे व्यापक मौलिक स्वतंत्रताओं का अधिकार है जो अन्य व्यक्तियों की समान स्वतंत्रताओं के साथ संगत हों तथा अंतर सिद्धांत (Difference Principle) शामिल है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ तभी वैध मानी जा सकती हैं यदि वे समाज के सबसे कमजोर वर्ग के लिए लाभकारी हों। इसके साथ ही सभी को समान अवसर मिलना चाहिए इसकी भी वकालत रॉल्स करते हैं (रॉल्स 1971)¹³। लिबर्टेरियनवाद के विपरीत रॉल्स पुनर्वितरण का समर्थन करते हैं ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि हर किसी को समान अवसर मिलें और धन की असमानताएँ समाज की बुनियादी संरचना को प्रभावित न करें।

अमर्त्य सेन ने भी वितरणात्मक न्याय को समाज में स्थापित करने हेतु क्षमता दृष्टिकोण (Capabilities Approach) नामक सिद्धान्त

का प्रतिपादन किया है। अमर्त्य सेन अपनी पुस्तक डेवलपमेंट एज फ्रीडम (1999) में न्याय का आकलन व्यक्तियों की क्षमताओं के आधार पर करते हैं अथवा वह लोगो की वास्तविक स्वतंत्रता का आकलन इस बात से करने का प्रयास करते हैं कि वे मूल्यवान जीवन स्थितियों को प्राप्त कर सकें न कि केवल संसाधनों या धन के वितरण के आधार पर ही जीवन का दृष्टिकोण अपनाए। सेन लिबर्टेरियन और समानतावादी ढाँचों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि वे केवल धन पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इसके विपरीत सेन मानव विकास और स्वतंत्रताओं के विस्तार पर जोर देते हैं जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, और समाज में भागीदारी शामिल हैं। सेन के अनुसार आर्थिक असमानताएँ तभी समस्याग्रस्त होती हैं जब वे लोगों की क्षमताओं को सीमित करती हैं। इसलिए नीतियों का उद्देश्य केवल धन की समानता नहीं होना चाहिए बल्कि क्षमताओं की समानता को बढ़ावा देना होना चाहिए (सेन 1999)।

वितरणात्मक न्याय के तहत आवश्यकता बनाम योग्यता बहस देखने को मिलती है जिसके बारे में हमें मार्क्सवादी चिंतन में देखने को मिलता है। इसके अनुसार यह तय करने का प्रयास किया जाता है कि संसाधनों और अवसरों का वितरण कैसे होना चाहिए। एक तरफ आवश्यकता आधारित वितरण का समर्थन करने वाले मार्क्स यह तर्क देते हैं कि संसाधनों का आवंटन व्यक्तियों की आवश्यकताओं के आधार पर किया जाना चाहिए। दूसरी तरफ योग्यता आधारित वितरण के समर्थक कहते हैं कि व्यक्तियों को उनके प्रयासों, क्षमताओं या योगदान के आधार पर पुरस्कृत किया जाना चाहिए। आवश्यकता आधारित वितरण का प्रमुख तर्क है कि संसाधनों का आवंटन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि हर किसी को आवश्यकताओं, जैसे कि भोजन, स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा, तक पहुँच प्राप्त हो सके। इस दृष्टिकोण का आधार यह है कि व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करना समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। साथ ही यह तर्क दिया जाता है कि समाज को अपने सबसे कमजोर सदस्यों के लिए एक सुरक्षा व्यवस्था प्रदान करनी चाहिए। यह विशेष रूप से उन प्रणालीगत असमानताओं को संबोधित करने में महत्वपूर्ण है जो व्यक्तियों के अवसरों और परिणामों को बाधित कर सकती हैं।

उपयोगितावादियों के अनुसार आवश्यकताओं को पूरा करना समग्र खुशी और सामाजिक स्थिरता की ओर ले जा सकता है। यह आवश्यकताओं को पूरा करके समाज कल्याण को बढ़ावा दे सकता है और सामाजिक तनाव को कम कर सकता है। इस विचारधारा के समर्थकों में मुख्य रूप से जरमी बेन्थम, जे एस मील आदि को रखा जा सकता है। जेरेमी बेन्थम जो उपयोगितावाद के संस्थापक माने जाते हैं उन्होंने तर्क दिया कि न्याय का उद्देश्य "सबसे बड़ी संख्या के लिए सबसे बड़ी खुशी" होना चाहिए (बेन्थम, 1890)¹²। उनके अनुसार नीतियों और संस्थानों का मूल्यांकन उनके परिणामों के आधार पर किया जाना चाहिए, विशेष रूप से उनके द्वारा समाज में व्यक्तिगत उपयोगिता को कैसे बढ़ाया जा सकता है इस पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। जॉन स्टुअर्ट मिल ने भी बेन्थम के विचारों को आगे बढ़ाया लेकिन उन्होंने खुशी के गुणात्मक भेद का भी परिचय दिया। मिल के वितरणात्मक न्याय के दृष्टिकोण में यह महत्वपूर्ण था कि न्याय इस बात को ध्यान में रखे कि संसाधनों के वितरण से कितनी और किस प्रकार की खुशी उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ— यदि धन का पुनर्वितरण अमीरों से गरीबों तक कुल खुशी में वृद्धि करता है, तो एक उपयोगितावादी इसे समर्थन देगा। हालाँकि यदि इस तरह का पुनर्वितरण उत्पादकता को नुकसान पहुंचाता है और दीर्घकालिक रूप से समाज की संपत्ति को कम करता है, जिससे समग्र खुशी कम होती है, तो उपयोगितावादी इसका विरोध कर सकते हैं (बेन्थम और जे एस मील, 2004)।

इसके विपरीत कार्ल मार्क्स का दृष्टिकोण मुख्य रूप से वर्ग संघर्ष (Class Struggle) और इस बात पर केंद्रित है कि आर्थिक प्रणाली असमानताओं को कैसे उत्पन्न करती हैं। मार्क्स के अनुसार सच्चा न्याय तभी प्राप्त हो सकता है जब निजी संपत्ति का उन्मूलन हो और उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व हो। मार्क्स की पूंजीवाद पर की गई आलोचना विशेष रूप से यह कि पूंजीवाद संपत्ति और शक्ति को कुछ लोगों के हाथों में केंद्रित करता है और शेष समाज को शोषण का शिकार बनाता है, यह वितरणात्मक न्याय पर बहसों को प्रभावित करने में अत्यधिक प्रभावशाली रही है। मार्क्स के लिए न्याय का अर्थ आर्थिक शोषण का अंत और संसाधनों का पुनर्वितरण है ताकि सच्ची समानता प्राप्त की जा सके।

भारत जैसे देश के लिए जहाँ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक विविधता की गहरी जड़ें हैं, ये ढाँचे अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। दीनदयाल उपाध्याय ने इस कमी को पहचाना और भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के साथ अधिक सामंजस्य रखने वाले न्याय के दर्शन को विकसित करने का प्रयास किया। पश्चिमी राजनीतिक चिंतन का यह विस्तृत इतिहास सत्ता, न्याय और स्वतंत्रता के सतत् संवाद को दर्शाता है। साथ ही यह भी प्रदर्शित करता है कि कैसे पश्चिम का दृष्टिकोण या तो पूंजीवादी है या समाजवादी। इसमें पूंजीवाद अपनी चरम सीमा पर पहुंचने पर समाज की मौलिक आवश्यकताओं को नजर अंदाज कर देता है वही समाजवाद अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों की हानि पहुंचाता है।

पश्चिमी विचारधाराओं की उपाध्याय द्वारा आलोचना

दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राजनीति में जिस समय अपने राजनीतिक चिन्तन, एकात्म मानववाद को प्रस्तुत किया उन दिनों अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में दो विचारधाराएँ मुख्य रूप से प्रचलित थीं जिनके आधार पर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की दिशा और दशा निर्धारित हो रही थी। इन विचारधाराओं में एक तरफ पूंजीवादी विचारधारा तो दूसरी तरफ साम्यवादी विचारधारा अपना अपना प्रभाव बनाये हुए थी। दोनों ही विचारधाराएँ भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती थीं जिसके कारण एक तरफ कार्ल मार्क्स ने राजनीति को वर्ग संघर्ष का नाम दिया तो दूसरी तरफ पूंजीवाद ने व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया। दीनदयाल उपाध्याय ने पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों की आलोचना यह कहते हुए कि ये पश्चिमी विचारधाराएँ मुख्य रूप से भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर जोर देती हैं और आध्यात्मिक और सांस्कृतिक कल्याण की अनदेखी करती हैं। उपाध्याय के अनुसार दोनों प्रणालियाँ अत्यधिक यांत्रिक (Mechanistic) हैं और मानव को केवल आर्थिक इकाई के रूप में देखती हैं। दीनदयाल उपाध्याय ऐसा मानते थे कि पूंजीवाद में लाभ का पीछा करना आर्थिक शोषण और असमान विकास की ओर ले जाता है जबकि साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आध्यात्मिक विकास को सामूहिक स्वामित्व और वर्ग संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करके नकार देता है (उपाध्याय, 1965)³। दीनदयाल उपाध्याय ने माना कि इन दोनों में से कोई भी विचारधारा असमानता और अन्याय की समस्याओं का समग्र समाधान नहीं प्रदान कर सकती क्योंकि वे दोनों व्यक्ति और समाज की गहरी आध्यात्मिक आवश्यकताओं की अनदेखी करते हैं (उपाध्याय, 1965)³। मोहर सिंह (2022)¹ के अनुसार उपाध्याय ने अपने दर्शन में स्पष्ट किया कि मनुष्य न तो पूंजीवाद चाहता है और न ही समाजवाद। मनुष्य का एक ही लक्ष्य है और वह है 'एकात्म मानव' का विकास और सुख। उपाध्याय का एकात्म मानववाद न्याय की एक अलग दृष्टि प्रस्तुत करता है जो व्यक्ति और समाज दोनों के समग्र विकास पर जोर देता है। उपाध्याय के लिए न्याय केवल संसाधनों के न्यायसंगत वितरण के बारे में नहीं है बल्कि यह भी सुनिश्चित करने के बारे में है कि

व्यक्तियों और समुदायों को अपने आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक क्षमता का पूरा उपयोग करने का अवसर मिले (उपाध्याय 1965 और सिंह, 2022)^{3, 1}।

उपाध्याय ऐसा मानते थे कि विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत की इसकी सांस्कृतिक पहचान तथा परम्पराओं से दूर करके इसे खंडित किया है। भारत की आत्मा इसकी सांस्कृतिक विरासत है जिसको खंडित करने के कार्य तमाम विदेशी आक्रान्ताओं, शाशकों ने किया है इसलिए भारत को अपने सांस्कृतिक पहचान फिर से बनाने, जानने व बनाने की जरूरत है। इसलिए भारत को भारतीय चिंतन और मूल्यों को अपनाना होगा (शर्मा, 2016)¹⁰। वह कहते हैं कि बाहरी सांस्कृतिक मूल्यों और तकनीक को देश की आवश्यकता के अनुसार तथा समय के अनुसार अपनाना चाहिए लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने संस्कृति, मूल्य आदि से भी जुड़े रहे। इस सांस्कृतिक पहचान और भारत को इसके मूल्यों, परम्पराओं से जोड़े रखने के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने एक सिद्धान्त, एकात्म मानववाद का प्रतिपादन किया (रूप राज, 2021)⁶।

एकात्म मानववाद और वितरणात्मक न्याय

भारतीय दर्शन सदैव मानव के सर्वांगीण विकास पर बल देता है। भारतीय दर्शन में मानव के न केवल शारीरिक विकास बल्कि मानव के मानसिक व आध्यात्मिक विकास पर जोर दिया गया है (कुमार और गजेन्द्र, 2021)¹⁸। भारत के जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, हिन्दू दर्शन सभी में हमें इस दृष्टिकोण के प्रमाण मिलते हैं। भारत के प्राचीन दार्शनिक मतों ने इस दृष्टिकोण को अपनाया है कि मनुष्य केवल एक शारीरिक प्राणी नहीं है बल्कि उसकी उच्चतर क्षमताओं और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास भी महत्वपूर्ण है। भारतीय दर्शन के तहत जैन दर्शन का मुख्य उद्देश्य अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे नैतिक सिद्धांतों के पालन द्वारा आत्मा की शुद्धि करना है। जैन दर्शन के अनुसार, आत्मा को कर्म बंधन से मुक्त कराना ही मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है। आत्मा को शुद्ध और निर्मल बनाना जैन दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए तपस्या, संयम, और ध्यान पर बल दिया गया है। आत्मा को संसार के बंधनों से मुक्त कर मोक्ष प्राप्त करने की दिशा में उन्नत करना ही सर्वांगीण विकास की चरम अवस्था मानी गई है। जैन धर्म में अहिंसा और सत्य पर विशेष जोर दिया गया है। नैतिक विकास के साथ-साथ मानसिक शांति और संतुलन के लिए ध्यान और साधना को महत्वपूर्ण साधन माना गया है (साधाकृष्णन 1923)। वही बौद्ध दर्शन में बौद्ध दर्शन का मुख्य उद्देश्य दुःखों से मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति है। बौद्ध दर्शन में 'आठ मार्ग' (अष्टांगिक मार्ग) का पालन करने से व्यक्ति न केवल शारीरिक, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक रूप से भी विकसित होता है। बौद्ध दर्शन के अष्टांगिक मार्ग में सही अथवा सम्यक दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही स्मृति और सही समाधि जैसे आठ तत्वों का पालन कर व्यक्ति जीवन के हर पहलू में संतुलन और उन्नति कर सकता है। यह मार्ग मानसिक और नैतिक शुद्धि के साथ-साथ ध्यान और समाधि द्वारा आध्यात्मिक विकास का मार्ग भी सुझाता है। बौद्ध धर्म में निर्वाण को आत्मिक विकास की अंतिम अवस्था मानी जाती है जहाँ व्यक्ति सभी प्रकार के दुःखों और संसारिक इच्छाओं से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। यह अवस्था आत्मा की उन्नति और शुद्धि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिन्दू दर्शन के विभिन्न प्रणालियाँ जैसे योग, सांख्य, वेदांत, और भगवद् गीता आदि सभी में सर्वांगीण विकास के पहलू पर जोर दिया गया है। व्यक्ति को केवल अपने शारीरिक और मानसिक विकास तक सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि आत्म-साक्षात्कार की दिशा में भी आगे बढ़ना चाहिए। योग दर्शन में योग, शरीर और मन के सामंजस्य पर बल

दिया गया है। यह न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है, बल्कि ध्यान और समाधि के माध्यम से मानसिक और आत्मिक शांति प्रदान करता है (अजितेश कुवर, 2024)। पतंजलि के योग सूत्रों में बताया गया है कि व्यक्ति को आठ चरणों का पालन करना चाहिए – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – ताकि उसका सर्वांगीण विकास हो सके।

भगवद् गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, और भक्तियोग का वर्णन है, जिससे मनुष्य अपने जीवन में संतुलन प्राप्त कर सकता है। गीता का उपदेश कहता है कि व्यक्ति को न केवल शारीरिक कर्म करना चाहिए, बल्कि अपनी आत्मा के विकास की दिशा में भी प्रयास करना चाहिए। आत्मा के साक्षात्कार के बिना जीवन अधूरा है। वेदांत में ब्रह्म की अनुभूति और आत्मा की पहचान को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बताया गया है (राधाकृष्णन 1923)। इसके अनुसार, व्यक्ति को अपने अस्तित्व की सीमाओं से परे जाकर आत्म-साक्षात्कार की दिशा में बढ़ना चाहिए। यह दृष्टिकोण जीवन के समग्र विकास पर बल देता है, जहां भौतिक विकास के साथ-साथ आत्मिक उन्नति भी अनिवार्य है। दीनदयाल उपाध्याय ने इसी भारतीय चिंतनधारा के आधार पर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे उन्होंने एकात्ममानव दर्शन सिद्धान्त कहा। दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद का मूल विश्वास यह है कि मनुष्य केवल आर्थिक इकाई नहीं है, बल्कि वह एक आध्यात्मिक प्राणी भी है, जिसकी भलाई भौतिक और आध्यात्मिक संतुलन पर निर्भर करती है। उपाध्याय के एकात्ममानव दर्शन के अनुसार मानव मन बुद्धि शरीर और आत्मा का संकल्पित रूप है जिसके अनुसार उसकी आवश्यकताये शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक दोनों हैं।

दीनदयाल उपाध्याय का सिद्धान्त मानव जीवन में संघर्षों का समाधान करने हेतु समाज, राज्य और राष्ट्र के साथ साथ मानव जीवन में समन्वय तथा परस्पर विरोधी तत्वों के बजाय एक दूसरे के पूरक होने का संकेत देता है। एकात्म मानववाद इस बात पर जोर देता है कि मानव जीवन न केवल शरीर, मन और बुद्धि में बल्कि मानव से मानव, मानव से परिवार, परिवार से गांव, गांव से समाज, समाज से राष्ट्र जैसे क्षेत्रों में भी समन्वय स्थापित हो। दीनदयाल के अनुसार प्रत्येक तत्व दूसरे से अभिन्न है तथा कोई भी तत्व अलग-थलग नहीं है (मोहर सिंह, 2022)।

एकात्म मानववाद एक "कल्याणकारी राज्य" की अवधारणा का समर्थन करता है, जो न्यूनतम आवश्यकताओं जैसे कि मुक्त शिक्षा और चिकित्सा देखभाल आदि को अधिकार के रूप में प्रदान करता है। दीनदयाल कहते हैं कि भोजन का अधिकार जन्मसिद्ध अधिकार है। समाज में जो लोग कमाते नहीं हैं, उन्हें भी भोजन मिलना चाहिए। इन अधिकारों को सुरक्षित करना राज्य का कर्तव्य है (मोहर सिंह, 2022)। उपाध्याय ने तर्क दिया कि वितरणात्मक न्याय में केवल भौतिक संपत्ति का वितरण ही शामिल नहीं होना चाहिए बल्कि यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि सांस्कृतिक पहचान की सुरक्षा और आध्यात्मिक कल्याण को भी प्राथमिकता दी जाए। एकात्म मानववाद का एक प्रमुख सिद्धान्त विकेंद्रीकरण है। उपाध्याय के अनुसार शक्ति और संसाधनों को स्थानीय स्तर पर विकेंद्रीकृत किया जाना चाहिए ताकि समुदाय अपनी व्यवस्थाओं को स्वयं संभाल सकें। यह विकेंद्रीकरण का सिद्धान्त आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से वितरणात्मक न्याय को बढ़ावा देता है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि स्थानीय नियंत्रण से अधिक न्यायपूर्ण परिणाम प्राप्त होते हैं। भारत में सभा और समीति के उदाहरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलते हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि भारत में स्थानीय शासन व्यवस्था विद्यमान थी जिसके आधार पर भारत स्वावलंबी था, जिसके शासन तथा प्रशासन की मौलिक आवश्यकताएँ स्थानीय स्तर ही पूरी होती थी। भारत में पंचायती राज व्यवस्था इसी ऐतिहासिक स्थानीय शासन व्यवस्था का परिणाम है। मौर्यकालीन समय में

यदि देखे तो गांव प्रशासन की स्थानीय इकाई होते थे जहां पर सार्वजनिक हित से सम्बंधित तथा उपयोगी विषयों पर निर्णय लिए जाते थे तथा गरीबों के लिए दान आदि कि व्यवस्था की जाती थी (चंदका, 2021)¹¹।

समकालीन समय में एकात्म मानववाद की वितरणात्मक न्याय के सन्दर्भ में प्रासंगिकता

आज के वैश्विक आर्थिक परिदृश्य में जहाँ असमानताएँ निरंतर बढ़ रही हैं दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद एक सार्थक और समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है। उनके दर्शन का जोर सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहलुओं पर उनके सिद्धान्त को विशिष्ट रूप से भारतीय संदर्भ में प्रासंगिक बनाता है। उपाध्याय का वितरणात्मक न्याय का दृष्टिकोण पश्चिमी उदारवादी परंपरा से भिन्न है जो अक्सर भौतिक संपत्ति या कानूनी अधिकारों के वितरण पर केंद्रित होती है। इसके विपरीत एकात्म मानववाद एक अधिक परिष्कृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसमें नैतिक और आध्यात्मिक आयाम भी शामिल हैं। यह समग्र दृष्टिकोण इस विचार को चुनौती देता है कि वितरणात्मक न्याय केवल आर्थिक साधनों या कानूनी सुधारों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इसके बजाय यह सुझाव देता है कि न्याय में व्यक्ति के समुदाय, राष्ट्र और ईश्वर के साथ संबंधों को भी शामिल किया जाना चाहिए। भारत जैसे देश में जहाँ आर्थिक विकास अक्सर बढ़ती असमानता के साथ हुआ है एकात्म मानववाद के सिद्धान्त अधिक समावेशी और स्थायी विकास की ओर मार्ग प्रदान करते हैं। विकेंद्रीकरण, आत्म-विकास और संसाधनों के न्यायपूर्ण आवंटन पर ध्यान केंद्रित करते हुए उपाध्याय का दर्शन आधुनिक लोकतंत्रों के सामने आने वाली कुछ प्रमुख चुनौतियों को संबोधित करने के लिए एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है। एकात्म मानववाद वितरणात्मक न्याय को समझने और संबोधित करने के लिए एक व्यापक ढांचा प्रदान करता है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आयामों को एकीकृत करते हुए उपाध्याय का दर्शन विकेंद्रीकरण, आत्म-विकास और संसाधनों के न्यायपूर्ण आवंटन के महत्व पर जोर देता है। यह समग्र दृष्टिकोण पूंजीवाद और समाजवाद की संकीर्ण भौतिकता को चुनौती देता है तथा इसके बजाय एक ऐसे विकास मॉडल का प्रस्ताव करता है जो समाज के सभी सदस्यों, विशेष रूप से सबसे हाशिए पर खड़े लोगों की भलाई को प्राथमिकता देता है। इस प्रकार एकात्म मानववाद एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना के लिए एक समयहीन और प्रासंगिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, एम. (2022) सोसियो-पोलिटिकल आइडियाज ऑफ दीनदयाल उपाध्याय फॉर ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ इंडिया
2. अगरवाल, एस. के. एंड मिश्र, ए. पंडित दीनदयाल उपाध्याय: डेमोक्रेसी एंड रोल ऑफ पोलिटिकल पार्टीज. सोशल इन्व्हीरी, 39
3. उपाध्याय, द (1965). इंटीग्रल हुमानिज्म.. भारतीय जनता पार्टी
4. भार्गव, द (एड). (2008). पोलिटिकल थ्योरी एन इंटीग्रल हुमानिज्म. पीयर्सन एजुकेशन इंडिया
5. सेन. ए (1919). डेवलपमेंट एज फ्रीडम. 1 एडी. न्यू यॉर्क, क्लोफ
6. राज, आर(2021). सोसियो-इकोनोमिक थॉट ऑफ पंडित दीनदयाल उपाध्याय. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशल साइंसेज, 11(06).
7. राधाकृष्णन, एस. (2006). इंडियन रिलीजियस थॉट. ओरिएंट पेपरबैक

8. अमरत्य, एस., अ, अमर्त्य, एस. (2009). द आईडिया ऑफ़ जस्टिस(पे. 253). लन्दन: पेंगुइन बुक्स.
9. शर्मा, डी. एम. सी. (2017). पंडित दीनदयाल उपाध्याय. पब्लिकेसंस डिविज़न मिनिस्ट्री ऑफ़ इनफार्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग
10. शर्मा, एम (2016). दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वांग्मय, वॉल्यूम 1–15, प्रभात पब्लिकेसंस.
11. चंदका, उमेश्वरओ(2021), "लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट इन इंडिया: एन हिस्टोरिकल एवोलुतिओ" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ अकादमिक रिसर्च, वॉल्यूम 8, पेज 39–47.
12. बेन्थम, जे. (1890).युटीलीटेरियानिजम. प्रोग्रेसिव पब्लिशिंग कंपनी.
13. रोल्स, जे. (1971). ए थ्योरी ऑफ़ जस्टिस. केंब्रिज(मास.).
14. नोजिक, आर. (1974). अनार्की, स्टेट एंड यूटोपिया.
15. बेन्थम, जे., एंड मील, जे. एस. (2004). युटीलीटेरियनिजम एंड अदर एसेज. पेंगुविन यू. के.
16. काट्ज, सी. जे. (1993). कार्ल मार्क्स ऑन द ट्रांजिसन फ्रॉम फ्युडेलिजम टू कैपिटलिज्म. थ्योरी एंड सोसाइटी, 363–389.
17. कुमार पी., गजेन्द्र. "बी. आर अम्बेडकर एंड दीनदयाल उपाध्याय ऑन सोसल जस्टिस: ए कम्पेरेटिव स्टडी". इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ सोशियोलॉजी एंड पोलिटिकल साइंस, वॉल्यूम 3, इशू 2, 2021, पेज 38–42.
18. कुमार पी., गजेन्द्र. "दीनदयाल उपाध्याय'ज फिलोसोफी ऑफ़ अन्वयोदय: ए वे टू प्रोटेक्ट फ्रॉम इकोनोमिक एंड सोशल जस्टिस इन कोविड पीरियड" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ मल्टीडिसिप्लिनरी एजुकेशन एंड रिसर्च, वॉल्यूम 6, इशू 4, 2021, पेज 44–48.
19. मुखर्जी, एस., एंड रामास्वामी, एस. (2011). ए हिस्ट्री ऑफ़ पोलिटिकल थॉट: प्लेटो टू मार्क्स. पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड.
20. मेरिल, एम. (2014). ऑन आवर मार्क्सरू एक्सप्लॉइटेसन, क्राइसिस एंड कैपिटलिज्म इन द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी. लेबर: स्टडीज इन वर्किंग क्लास हिस्ट्री ऑफ़ द अमेरिकन्स 11(1), 103–119.
21. <https://www.ajiteshkunwar.com/hindi/yoga-philosophy-spiritual-principles-and-principles.php> Accessed on 25/11/2024
22. <https://patanjaliyogasutra.in/article/ashtang-yoga-eight-components-of-yoga/#:~:text=> Accessed on 25/11/2024